विरह-वेदना की कवयित्री महादेवी वर्मा

❑ डॉ० सत्यपाल श्रीवत्स*

हिन्दी साहित्य में महादेवी वर्मा का गौरवपूर्ण स्थान है। उन्हें आलोचक मीरा का अवतार भी मानते हैं। उनका कहना है कि जिस प्रकार मीरा भगवान् कृष्ण के विरह में तड़पती थी और बार-बार भाव विभोर होकर गाती थी-''मीरा के प्रभु, पीड़ मिटेगी जब वैद सांवरिया होय'' उसी प्रकार महादेवी वर्मा भी उस अनन्त को संबोधित करती हुई कहती है -

''पर शेष नहीं होगी मेरे प्राणों की क्रीड़ा।
पीड़ा में तुमको ढूंढा तुम में ढूंढूंगी पीड़ा॥''

इन दोनों कवयित्रियों की धार्मिक विचारधाराओं में अन्तर है तो इतना ही कि जहां मीरा साकार भगवान् की उपासिका है तो वहां महादेवी वर्मा इस अनन्त सृष्टि के अणु-अणु में अपने आराध्य को ढूंढती है। कथ्य दोनों का एक ही है। दोनों विरह की वेदना में तड़पती हुई अपने आराध्य का आवाहन करती हैं। जिस प्रकार मीरा के गीतों में विरह-वेदना का मर्मस्पर्शी चित्रण है, ठीक उसी प्रकार महादेवी की कविता में भी वेदना का स्वर अनेक रूपों में मुखरित हुआ है। वस्तुतः दोनों के काव्य का केन्द्र बिन्दु वेदना-भाव ही है। संक्षेप में वेदना के बिना दोनों की कविता अधूरी है। क्योंकि मीरा बहुत समय पहले हुई थी और महादेवी वर्मा वर्तमान समय में हुई, अतः उसे मीरा का अवतार मानना भी युक्ति संगत है कि शान्ति प्रिय द्विवेदी इन्हें 'मीरा की काव्यात्मा' मानते हैं।

क्योंकि इस लेख में केवल वेदना की कवयित्री महादेवी वर्मा के बारे में ही कुछ कहने का प्रयास किया जाना है, अतः अपनी लेखनी को उन्हीं की काव्य साधना पर विचार करने के लिए सीमित रखते हुए विरह वेदना की भक्त कवयित्री मीरा की काव्यसाधना पर कभी फिर विचार किया जाएगा।

प्रश्न उठता है कि महादेवी को पीड़ा या वेदना के साथ इतना लगाव क्यों और कैसे हो गया था? क्या किसी दार्शनिक विचारधारा ने उनके चिन्तन को प्रभावित किया था या उन्हें किसी अभाव ने सताया था? या उन्हें कभी अचानक किसी दैवी आपदा का शिकार होकर किसी अभाव का असह्य कष्ट सहन करना पड़ गया था? या किसी अप्रत्याशित घटना के कारण उनका मन संसार से विरक्त होकर उस असीम सत्ता की खोज में उन्मुख हो गया था? जिसके

* संपर्क : 47/5 रूपनगर, हाऊसिंग कालोनी, जम्मू-180 013

वियोग की पीड़ा में वह सदा बिलखती-तड़पती रहती थीं। कवयित्री में वेदना की अनुभूति इतनी तीव्र थी कि वह अपने आराध्य में भी अपने प्रति पीड़ा की अनुभूति खोजना चाहती है, जैसे कि ऊपर उद्धृत पद से स्पष्ट है। ''नीर भरी दुख की बदली'' में कवयित्री ने युगों-युगों से पीड़ित-प्रताड़ित नारी की वेदना संगीतमय स्वर देकर मुखरित किया है। प्रसिद्ध आलोचक डॉ० मदान ने ठीक ही कहा है- महादेवी वर्मा जब असीम-ससीम, आत्मा-परमात्मा, विरह-मिलन, पिंजर-कीर, सुमन-निष्ठुर आदि की बात करती हैं तो इनकी संवेदनाओं में शृंखलाओं में जकड़ी भारतीय नारी का चित्र अंकित होता है और साथ ही कभी-कभी इन बंधनों से मुक्ति पाने की कामना तथा संभावना का भी। इसीलिए विरह की स्थिति चिर है और मिलन की अचिर उनकी रचनाएँ गद्य में भी हैं। पीड़ा की विराट व्यापकता की गहरी संवेदना ने 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सांध्यगीत' तथा 'दीपशिखा' काव्य-संग्रहों से हिन्दी कविता के वैभव में अभिवृद्धि की है।

महादेवी के काव्य का अध्ययन करने पर स्वत: आभास हो जाता है कि वह बौद्ध दर्शन, वेदान्त दर्शन तथा सूफी दर्शन से तो प्रभावित थीं ही साथ-ही-साथ सन्त कबीर, मीरा, सूरदास और तुलसीदास का भी उनके मानस पटल पर गहरा प्रभाव था। जब वह कहती हैं-

क्या पूजा क्या अर्पण रे?
उस असीम का सुन्दर मन्दिर
मेरा लघुतम जीवन रे।

तो क्या इस पर वेदान्त के ''अहं ब्रह्मास्मि'' सिद्धान्त की स्पष्ट छाप परिलक्षित नहीं होती?

यह भी प्रतीत होता है कि कवयित्री को सन्त कवियों में से मीरा के बाद सूरदास ने सबसे अधिक प्रभावित किया था। मीरा के समान सन्त सूरदास भी अत्यधिक भावुक कवि थे और अत्यन्त भावुकता के क्षणों में ही उनके संवेदनशील हृदय से कविता का स्वत: स्फूर्त प्रवाह फूटता था। इधर महादेवी वर्मा का भावुक एवं कोमल हृदय भी किन्हीं एकान्त क्षणों में अनजाने ही संवेदनशील होकर भोलेपन की लज्जा की स्थिति में स्वत: मुखरित होकर अपनी वेदना के स्वरों को उद्‌भावित करने लगता है -

इन ललचाई आंखों पर,
पहरा था जब व्रीड़ा का,
साम्राज्य मुझे दे डाला,
उस चितवन ने पीड़ा का।

परिणाम यह हुआ कि कवयित्री की विरह-वेदना और अधिक गहरी होती गई और वह उसमें पूरी तरह पग गई और वह गा उठी - ''मैं नीर भरी दुख की बदली।'' अपने आपको दुख की बदली कहने का उसका अभिप्राय है उस असीम के साथ अपना तादात्म्य सम्बन्ध जोड़ना। इससे कवयित्री की वेदना केवल छोटे से शरीर में ही सीमित न होकर उस अनन्त ब्रह्माण्ड के

साथ जुड़ जाती है, जिसके कण-कण में उसका प्रिय व्याप्त है। पर दूसरे ही क्षण में वह उस असीम का मन्दिर अपने इसी छोटे से शरीर को अनुभव करने लगती है। परिणामत: किसी भी प्रकार की पूजा-अर्चना को बेकार समझने लगती है, जैसे कि ऊपर उद्धृत पद से स्पष्ट है।

कभी-कभी कवयित्री वर्मा अपने उस असीम प्रिय के विरह में इतनी रोती और तड़पती है कि अन्तत: रो-रो कर उसकी आंखों के कोष भी खाली हो जाते हैं, परन्तु जिस सुनहले स्वप्न की कल्पना उसके मस्तिष्क में थी, उसे लगने लगा मानो उन्हें देखे हुए कई युग बीत गए हैं –

"उस सोने के सपने को
देखे कितने युग बीते
आंखों के कोष हुए हैं
मोती बरसा कर रीते।"

आखिर वह वेदना कवयित्री को क्यों प्रिय लगने लगती है इस बारे में वह स्वयं स्पष्ट करती हुई कहती है–

"सुख और दुख की धूप-छाया के डोरों से बुने हुए जीवन में मुझे केवल दुख ही गिनते रहना क्यों इतना प्रिय है? यह बहुत लोगों के आश्चर्य का कारण है। इस क्यों का उत्तर दे सकना मेरे लिए किसी समस्या को सुलझा डालने से कम नहीं है। संसार साधारणत: जिसे दुख और अभाव के नाम से जानता है वह मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है। उस पर पार्थिव दुख की कभी छाया भी नहीं पड़ी। कदाचित् यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी।"

अपने पैत्रिक संस्कारों के विषय में भी कवयित्री पूर्णतया कृतज्ञ है। इसीलिए वह कहती है कि उसे अपनी माता से भावुकता तथा पिता से चिन्तनशीलता प्राप्त हुई है। परन्तु यह भी सम्भव है कि भस्ताने यौवन की मधुमय बेला में अपने पति से विछोह की पीड़ा उसके अवचेतन मन में घर कर गई हो, जिसने बाद में उसके संवेदनशील हृदय और भावुक स्वरों को भी झकझोरा हो, जिससे उसके विरह-गीतों का सृजन सम्भव हो सका हो। उसके विरह गीत यद्यपि उसकी स्वानुभूति का परिणाम है, परन्तु उनमें हम कहीं-कहीं समाज का आर्त क्रन्दन का स्वर भी गूंजता हुआ अनुभव करते हैं।

जब हम महादेवी की रचनाओं के क्रमिक विकास पर दृष्टि डालते हैं तो उनके वेदना-वाद को उत्तरोत्तर स्वच्छ से स्वच्छतर होता हुआ देखते हैं। वह वेदना एक व्यक्ति से निकल कर सारी सृष्टि में व्याप्त हो जाती है अर्थात् तब व्यष्टि की वेदना समष्टि की वेदना बन जाती है अर्थात् वह सारी सृष्टि का अंग बन जाती है। तभी तो वह गुनगुनाने लगती है–

"मैं नीर भरी दुख की बदली"। और उस समय कवयित्री किसी अनोखे एवं नये संसार की कल्पना करने लगती है –

''चाहता है पागल प्यार
अनोखा एक नया संसार''

अपने वेदनावाद के उत्तरोत्तर विकास के समर्थन में उनकी निम्नलिखित पंक्तियां अवश्य ध्यान योग्य हैं –

''मेरी दिशा एक और मेरा पथ एक रहा है। केवल इतना ही नहीं बल्कि वे प्रशस्त से प्रशस्ततर और स्वच्छ से स्वच्छतर होते गए हैं।''

स्पष्ट है कि कवयित्री वर्मा निरन्तर अपने बौद्धिक और आध्यात्मिक आयाम को क्रमश: विस्तृत करती हुई अपने विकास की मज़िलें उत्तरोत्तर तय करती जाती है। वस्तुत: एक सच्चे साधक की पहचान भी यही है कि उत्तरोत्तर विकास पथ पर अग्रसर होता चले क्योंकि मानव एक विकासशील प्राणी है। मानव और पशु में यही तो अन्तर है।

महादेवी की दो प्रारम्भिक परन्तु प्रसिद्ध रचनाओं 'नीहार' तथा 'रश्मि' के नामकरण से भी यह तथ्य स्वत: ही स्पष्ट हो जाता है कि जहां 'नीहार' के पदों में कौतुहल तथा जिज्ञासा भरी वेदना है, परन्तु साथ ही इनमें एक बाल सुलभ चंचलता भी है। इसके साथ ही ऐसा भी प्रतीत होता है कि मानो सब कुछ कुहासे में ही ढका हुआ है, इसीलिए इनके बारे में वह स्वयं स्पष्ट करती हुई कहती है – ''नीहार के रचनाकाल में मेरी अनुभूतियों में वैसी ही कौतुहलमयी वेदना उमड़ आती थी जैसी एक बालक के मन में दूर दिखाई देने वाली अप्राप्य सुनहली उष्ण और स्पर्श से दूर और सजल मेघ के प्रथम दर्शन से उत्पन्न हो जाती है।''

''रश्मि'' के रचनाकाल में यद्यपि कवयित्री के मानसिक धरातल का आयाम अपेक्षाकृत अधिक विकसित हुआ प्रतीत होता है, परन्तु उस समय भी उसे अपने और अपने आराध्य के मध्य एक झीना सा पर्दा महसूस होता है। उसके संवेदनशील हृदय में किसी अज्ञात को मिलने के लिए एक तीव्र ललक भरी टीस अवश्य है, परन्तु इस बात का उसे स्पष्ट आभास नहीं है कि वह अज्ञात आखिर है कौन? उसके बारे में कोई निश्चित धारणा न बना सकने के कारण वह केवल उसकी छाया की अनुभूति से ही सिहर उठती है। वह छाया मानो उसके साथ हर समय आंख-मिचौनी ही करती चलती है। कभी वह उसकी अनुभूति के घेरे में आ जाती है, जबकि कभी सहसा उसके सामने से या ध्यान तक से भी तिरोहित भी हो जाती है और उसे सब कुछ कुहासे में ढका हुआ प्रतीत होता है। अपनी बालसुलभ अबोधता के कारण कवयित्री अपने उस अज्ञात प्रियतम को पहचानने में अपने आपको असमर्थ पाती है। पर इसके बावजूद भी वह कभी हार नहीं मानती है।

अपने प्रियतम को मिलने के लिए उसकी जिज्ञासा और वेदना भरी तड़प दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही चलती है और धीरे-धीरे वह किसी सूने तट की कल्पना करने लगती है, जहां खड़ी होकर वह हीरक तारों से बनाए प्याले में अपने प्राणों का आसव भर कर तथा असे मलयाचल के झोकों से ढांप कर अपने प्रियतम की प्रतीक्षा कर सके :–

"उन हीरक तारों का
कर चूर्ण बनाया प्याला।
पीड़ा का सार मिला कर
प्राणों का आसव डाला
मलयाचल के झोंको में
अपना उपहार लपेटे,
मैं सूने तट पर आई
विरह उद्‌गार समेटे।"

इतने सूक्ष्म प्रतीकों की सहायता से मनोहारी बिम्बयोजना करना कवयित्री महादेवी की प्रतिभा का ही काम है।

कवयित्री को कभी-कभी अर्द्ध रात्रि के समय अपने प्रियतम के आने का आभास होता है। उसके आने के समय उसके पदचाप की आहट कवयित्री को अपने निमिषों से भी कम प्रतीत होती है। इसीलिए वह उसी समय संयोग से मुखरित होती हुई कोयल को किञ्चित डांट भरे लहज़े में सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे मुखर, कोयल, थोड़ा धीरे-धीरे बोलो। अन्यथा कहीं ऐसा न हो कि आधी रात के समय चुपचाप आने वाला मेरा प्रियतम कहीं वापस न लौट जाए।

हां, यदि तुमने बोलना ही है तो करुणा भरी आवाज से बोलो ताकि प्रातः काल के समय भी वह मेरा हृदय छोड़ कर अन्यत्र जाने का नाम न ले :-

"मुखर पिक, हौले बोल,
"हठीले हौले बोल।
प्रिय मेरा निशीथ नीरवता में आता है चुपचाप।
मेरे निमिषों से भी नीरव है उसकी पद चाप॥
भर पावे तो स्वर लहरी में भर दे वह करूण हिलोर।
मेरा उर तज जाने का भोर न ढूंढे ठौर।"

अन्ततः वह उस अज्ञात प्रियतम के विरह में इतनी व्याकुल होकर तड़पने लगती है कि उसके बिना उसे सर्वत्र एक कल्पनातीत सूनापन अनुभव होने लगता है, जिसमें वह मतवाली होकर विचरण करने लगी है, तथा उस विरहाग्नि में उसे अपने प्राण क्षण-क्षण जलते हुए प्रतीत होने लगते हैं –

"अपने इस सूनेपन की
मैं हूं रानी मतवाली।
प्राणों का दीप जलाकर
करती रहती दीवाली।"

परन्तु विरह की उद्दाम पीड़ों में भी उसे अपने प्रियतम से मिलने की पूर्ण आशा और विश्वास है। इसीलिए वह इस विषय में किसी से भी किसी भी प्रकार का उलाहना सुनने के लिए तैयार नहीं है। तभी तो वह कहती है कि उसका प्रिय के साथ मिलन एक स्वप्न नहीं है, अपितु एक यथार्थ भी है। वे दोनों समय-समय पर कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में एवं सूक्ष्म रूप में अवश्य मिल ही जाते हैं। इसीलिए वह अपनी सखी की जिज्ञासा का उत्तर उपालम्भ भरे स्वर में देती हुई कहती है कि हमारा मिलन स्वप्न नहीं अपितु एक यथार्थ है। निम्नलिखित पद में कवयित्री कितने सूक्ष्म प्रतीकों के माध्यम से इस तथ्य को स्पष्ट करती है, जो विचारणीय है –

"कैसे कहती हो सपना आली,
इस मूक मिलन की बात?
भरे हुए हैं फूलों में
मेरे आंसू उनके हास।"

उस अनन्त एवं अज्ञात प्रियतम के विरह में तड़पती महादेवी वर्मा की कविता में बिम्ब योजना की जो सर्वत्र उदात्त कलात्मकता लक्षित होती है वह अपना उपमान स्वयं है। कवयित्री के रूप आकार सम्बन्धी बिम्बों में जो गरिमा है वह पाठकों के हृदय को भरसक छूकर आन्दोलित करती है –

जो तुम्हारा हो सके नीला कमल यह आज।
खिल उठे निरूपम तुम्हारी देख स्मित का प्रात।
जीवन विहर का जल जात॥ यामा पृ० 142॥

ऊपर किये गए संक्षिप्त सर्वेक्षण से स्पष्ट हो जाता है कि महादेवी वर्मा मीरा के बाद एक मात्र विरह वेदना की कवयित्री थी। जितनी संवेदना के साथ उन्होंने विरह-वेदना को अपनी कविता के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है वैसे मीरा के बाद कोई भी हिन्दी कवि नहीं कर पाया है।

दिनांक 11-9-1987 में जब इन्होंने इस संसार को छोड़ा था तो हिन्दी जगत् में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण साहित्य जगत् में शोक की लहर फैल गई थी, परन्तु यह एक अकाट्य सत्य है कि उच्च कोटि का कवि या साहित्यकार अपनी कृतिओं के माध्यम से सदा अमर रहता है। अन्त में मैं डॉ० कीर्ति केसर के मैसूर हिन्दी प्रचार परिषद् पत्रिका के जून- 2002 अंक में छपे "हिन्दी कविता में महिलाओं का योगदान" लेख की ये पंक्तियां साभार उद्धृत करके इस लेख को पूर्ण विराम देता हूँ-पंत, प्रसाद, निराला के बाद महादेवी वर्मा ही ऐसी कवयित्री हैं जिनका नाम हिन्दी साहित्य के इतिहास ने गर्व से सच्चे मोती की तरह धारण किया है।" (पृ० 12)